E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2020; 2(3): 697-700
Received: 11-05-2020
Accepted: 13-06-2020

उपेन्द्र दास
शोधार्थी (राजनीति विज्ञान विभाग)
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
उपेन्द्र दास
शोधार्थी (राजनीति विज्ञान विभाग)
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा, बिहार, भारत

भारतीय समाज पर सामाजिक न्याय के क्षेत्र में डॉ. बी. आर. अंबेडकर : एक अनुशीलन

उपेन्द्र दास

सारांश
नीचे से लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया ने जाति व्यवस्था के अस्तित्व और पारंपरिक रूप से शक्तिशाली समूहों के प्रभुत्व को खतरे में डाल दिया है। अब हम भारत में सामाजिक व्यवस्था में ऐसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास देख रहे हैं। यह इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में है, अधिक से अधिक लोग डॉ. बीआर अंबेडकर की विचारधारा की प्रासंगिकता और महत्व की खोज कर रहे हैं, जिन्होंने जाति व्यवस्था के वैज्ञानिक विश्लेषण को आगे बढ़ाया, हिंदू धर्म के तरीके और लड़ाई का मतलब था बुराइयों और पतन। मानव मूल्यों और गरिमा की बहुत उपेक्षा के परिणामस्वरूप हम अक्सर सबसे अधिक मायावी टर्न सामाजिक न्याय का उपयोग करते हैं, लेकिन शायद ही कभी इसे परिभाषित करते हैं क्योंकि यह समाज के विचलन वाले वर्गों के विचलन के परस्पर विरोधी दावों से आच्छादित है। इसके अलावा यह राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में व्याख्या और निहितार्थ एक बहु–संदर्भीय शब्द है। सामाजिक न्याय का आधुनिक विचार किसी भी सीमा के बिना एक नए सामाजिक व्यवस्था की शुरुआत करने से संबंधित है, जो विशेष रूप से समाज के विभिन्न वर्गों और विशेष रूप से समाज के कमजोर और कमजोर वर्गों के लिए अधिकारों और लाभों को सुरक्षित कर सकता है। समग्र रूप से, यह सही है कि किसी भी वास्तविक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया भारत में सामाजिक न्याय के माध्यम से ही शुरू की जा सकती है। उसके लिए दलितों की मुक्ति, आत्मसम्मान की बहाली से, जिसकी बहुत जरूरत है। डॉ. बी आर अम्बेडकर के दृष्टिकोण ने हमें भारत में सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम दिया है। इसलिए, वास्तविक सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए डॉ. बी आर अम्बेडकर की विचारधारा और दृष्टिकोण को आत्मसात करना सभी प्रगतिशील और लोकतांत्रिक शक्तियों का कर्तव्य है।

मुख्यशब्दः सामाजिक न्याय, हाशिए पर, उदास, सामाजिक लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, गरिमा, मुक्ति, मानव व्यक्तित्व

प्रस्तावना
लगभग चार दशकों के अंतराल में अम्बेडकर विभिन्न चरणों से गुजरे। उन्होंने सार्वजनिक टैंकों से पीने के पानी के मानवाधिकारों को हासिल करने के लिए अछूतों के संघर्ष का नेतृत्व किया; अवसादग्रस्त वर्गों के लिए अलग निर्वाचक मंडल के लिए उन्होंने पहले स्वतंत्र लेबर पार्टी और बाद में अनुसूचित जाति फेडरेशन का आयोजन किया। वह 1942 में वायसराय की कार्यकारी परिषद में श्रम सदस्य बने; और बाद में स्वतंत्र भारत की पहली कैबिनेट के कानून सदस्य बने। वह भारत की संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे और उन्हें संविधान के जीम वास्तुकार के रूप में जाना जाता था। अंतिम चरण में उन्होंने हिंदू धर्म को त्याग दिया और बौद्ध धर्म अपना लिया। उन्होंने धार्मिक सुधार आंदोलनों के लिए सामाजिक मुक्ति के लिए अपने आंदोलन को अधीन किया। भारत में अशिक्षा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, गरीबी, हठधर्मिता और अंतर–जातीय संघर्ष जैसी कई समस्याओं का सामना करने के कारणों में से एक यह है कि भारत सरकार सामाजिक न्याय के आधार पर नागरिकों के बीच धन और जिम्मेदारी के बोझ को वितरित करने में विफल रही है। दूसरे, नागरिकों को उनके अधिकारों, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक नहीं किया जाता है, न ही उन्होंने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे सामाजिक मूल्यों को आंतरिक रूप दिया है। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान को प्रारूपित करने में अपनी भूमिका के माध्यम से पहले कार्य में योगदान दिया है। उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन को प्रस्तुत और प्रचारित करके दूसरे कार्य में योगदान दिया। नागरिकों को अपने कर्तव्यों, अधिकारों और जिम्मेदारियों से अवगत कराने की आवश्यकता कई सामाजिक विचारकों और सुधारकों द्वारा अधिक या कम सीमा तक महसूस की गई थी। प्राचीन काल में, चार्वाक, महावीर, बुद्ध, कबीर और नानक जैसे विचारकों ने भारतीयों को रचनात्मक सामाजिक मूल्य सिखाने और सामाजिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देने के प्रयास किए। आधुनिक समय में, राजा राम मोहन राय, जोतिबा फुले, अगरकर, वी. आर. धीरे, शाहू महाराजा और कई अन्य जैसे सामाजिक और धार्मिक सुधारकों ने इसी तरह के प्रयास किए।

हालांकि डॉ। बी.आर. अम्बेडकर को सामाजिक विचारकों और सुधारकों की एक ही परंपरा से संबंधित कहा जा सकता है, उनका योगदान अन्य लोगों से महत्वपूर्ण तरीके से अलग है।[1]

कई अन्य लोगों के विपरीत, डॉ. अम्बेडकर ने हिंदू सामाजिक दर्शन पर सीधा हमला किया, जिसने पारंपरिक भारतीय समाज और धर्म को आधार बनाया और सामाजिक न्याय की नींव पर एक नए समाज के गठन की आवश्यकता पर बल दिया ताकि दलितों का एकीकरण सुनिश्चित हो सके। उन्हें यकीन था कि नागरिकों को उनके अधिकारों, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से अवगत कराने और लोगों में राष्ट्रवाद और देशभक्ति की भावना को बढ़ावा देने के लिए एक सामाजिक व्यवस्था बहुत आगे बढ़ जाएगी। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर ने भारतीय समाज की आलोचना की और राष्ट्रीय और सामाजिक एकीकरण के लिए उनकी खोज, साथ ही असमानता जैसी सामाजिक समस्याओं को हल करने का उनका प्रयास, और दलित और पिछड़े वर्गों के खिलाफ भेदभाव सामाजिक न्याय की एक विशिष्ट अवधारणा द्वारा नियंत्रित किया गया। इसलिए भारत को जिन सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, उससे निपटने के हमारे प्रयासों में हमें डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक दर्शन को आकर्षित करने की आवश्यकता है। डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्यायः हम राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जैसे विभिन्न दृष्टिकोणों से सामाजिक न्याय के बारे में बात कर सकते हैं। इसलिए सामाजिक न्याय की एक भी परिभाषा देना बहुत मुश्किल है।[2]

सामाजिक न्याय भी कानूनों, परंपराओं, हठधर्मियों, रीति–रिवाजों, शिष्टाचार और अपमान की आलोचना करता है जो अन्याय को समाप्त करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। सामाजिक न्याय की अवधारणा के पीछे मूल रूप से दो विचार हैं; अर्थात्, सामाजिक न्याय एक दैवी तत्व द्वारा शासित और सामाजिक न्याय एक व्यक्ति द्वारा शासित के रूप में जो मन की शुद्धता अर्थात् नैतिकता है। अब तक के पहले विचार का संबंध है, यह शुरुआती वैदिक काल के दौरान वकालत की गई थी जहां भगवान की एक निश्चित अवधारणा और कर्म सिद्धांत के संदर्भ में। अब तक दूसरा विचार यह है कि कारवाका, बौद्ध और जैन धर्म द्वारा इसकी वकालत की गई थी। ईश्वरीय तत्व को महत्व देने के बजाय, उन्होंने मनुष्य और उसके धर्मी एक्टन को प्रधानता दी। डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार किया कि सामाजिक न्याय की अवधारणा के पीछे नैतिक और कानूनी विचार हैं। उन्होंने न्याय को एक मार्गदर्शक और मूल्यांकन सिद्धांत के रूप में भी स्वीकार किया। सामाजिक न्याय की उनकी अवधारणा स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मानवीय मूल्यों पर आधारित थी। उन्होंने प्रो बर्गबोन के स्पष्टीकरण से सहमति व्यक्त की, "न्याय ने हमेशा समानता के विचारों को विकसित किया है। नियम और कानून, सही और धार्मिकता का मूल्य में समानता से संबंध है। यदि सभी पुरुष समान हैं, तो सभी पुरुष एक ही सार के हैं और सामान्य सार उन्हें समान मौलिक अधिकारों और समान स्वतंत्रता के लिए प्रदान करता है।[3]

हिन्दू धर्म के दर्शन पर डॉ. अम्बेडकर

डॉ. अम्बेडकर ने हिंदू धर्म को एक सकारात्मक धर्म बताया। सकारात्मक धर्म की विशिष्ट विशेषता यह है कि यह एक आदिवासी धर्म की तरह विकसित नहीं है, लेकिन इतिहास में एक निश्चित अवसर पर जानबूझकर बनता है। एक महान ऐतिहासिक व्यक्तित्व के विचार से इस धर्म की उत्पत्ति हुई है। ईश्वरीय शासन के अपने नियम हैं। यह दावा करता है कि इसकी मूल्य प्रणाली भी दिव्य है। इसकी अपनी आचार संहिता है और ये कोड व्यक्ति की धार्मिक, कर्मकांड और दैनिक प्रथाओं को निर्धारित करते हैं। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, सकारात्मक धर्म के ये सभी लक्षण हिंदू धर्म पर लागू होते हैं और इसलिए हिंदू धर्म एक सकारात्मक धर्म है।[4]

वर्ण और जाति के माध्यम से आश्रम्यवस्था और दासता असमानता के कुछ उदाहरण हैं जो हमें हिंदू वर्ण व्यवस्था में मिलते हैं। नियम बनाते समय, मनु ने पर्याप्त एहतियात बरती कि वे असमानता के सिद्धांत को न बिगाड़ें। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, सामाजिक और धार्मिक असमानताएं हिंदू धर्म की अनिवार्य प्रकृति हैं, जो हिंदू सामाजिक व्यवस्था में परिलक्षित होती हैं। डॉ. अंबेडकर ने दिखाया कि हिंदू धर्म स्वतंत्रता के सिद्धांत में विश्वास नहीं करता है। स्वतंत्रता सामाजिक समानता, आर्थिक सुरक्षा और ज्ञान की उपलब्धता से जुड़ी है। हिंदू धर्म सामाजिक समानता को बढ़ावा नहीं देता है। इसी तरह यह एक व्यक्ति के काम के रूप में वोकेशन की स्वतंत्रता को नकारता है जो पहले से ही पूर्व निर्धारित है। उसे अपनी पसंद का व्यवसाय चुनने का कोई अधिकार नहीं है। हिंदू धर्म शूद्रों को धन संचय करने की अनुमति नहीं देता है। इस प्रकार हिंदू धर्म में, आर्थिक स्वतंत्रता या आर्थिक सुरक्षा का कोई विकल्प नहीं है । डॉ. अंबेडकर ने यह भी दिखाया कि हिंदू धर्म भाईचारे की भावना के विकास को प्रोत्साहित नहीं करता है क्योंकि इस क्रमबद्ध सामाजिक व्यवस्था में पानी–तंग डिब्बे हैं। उन्होंने इस बात को और स्पष्ट किया कि 3000 जातियां और उपजातियां हैं, जिनके कारण सामाजिक जीवन खंडित है। इसी तरह, हिंदू धर्म अंतर–जातीय और बहिष्कृत विवाह की अनुमति नहीं देता है। इसलिए हिंदुओं में भ्रातृत्व की कमी है।[5]

जाति व्यवस्था के खिलाफ

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी उत्पत्ति को विस्तृत करके जाति व्यवस्था के आलोचनात्मक मूल्यांकन की शुरुआत की। उनके अनुसार एंडोगैमी जाति व्यवस्था का एक अनिवार्य लक्षण है। बल्कि जाति व्यवस्था के लिए एंडोगैमी का नियम जिम्मेदार है। उन्होंने बताया कि मनु के बाद से शादी के नियम अधिक कठोर हो गए। मनु ने इन नियमों को संहिताबद्ध किया और उन्हें धार्मिक प्रतिबंधों के रूप में माना। अंतरजातीय विवाह को ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध एक पाप माना गया। इन संहिताओं को तोड़ने वालों पर कठोर दंड लगाया गया। नियम तोड़ने वाले व्यक्ति को मुख्य जाति से बहिष्कृत किया गया था। इन बहिष्कृत लोगों को अपना स्वतंत्र समूह बनाने के लिए मजबूर किया गया। इन समूहों के भीतर एंडोगैमी का नियम भी काम कर रहा था।[6]

यहाँ डॉ. अम्बेडकर यह दिखाना चाहते थे कि जाति व्यवस्था ब्राह्मणों के स्वार्थी इरादे से उत्पन्न हुई थी और मनुस्मृति जैसे धार्मिक ग्रंथों के समर्थन के माध्यम से अधिक कठोर हो गई थी। वह आगे दिखाना चाहते थे कि हिंदू सामाजिक व्यवस्था को भाईचारे की भावना से सूचित नहीं किया गया क्योंकि यह ब्राह्मणों के स्वार्थी और आत्म–केंद्रित रवैये में उत्पन्न हुआ था। डॉ. अंबेडकर ने जाति व्यवस्था के खिलाफ मजबूत तर्क दिए। हिंदू समाज की संरचना और संवैधानिक तत्वों के साथ जाति व्यवस्था की परिकल्पना की गई है। इसने पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था बनाई। इसने समाज को चार जातियों में विभाजित किया। इन जातियों को एक श्रेणीबद्ध तरीके से व्यवस्थित किया गया था। इस प्रणाली में व्यक्ति की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति का निर्धारण उस जाति के आधार पर किया जाता है जिसमें वह पैदा हुआ था और एक व्यक्ति, हालांकि सक्षम था, उसे अपनी स्थिति बदलने का कोई अधिकार नहीं था। इसके अलावा, समाज के सदस्यों के बीच संबंध तय और निर्धारित थे। तो जाहिर है कि जाति व्यवस्था एक व्यवस्थित और अच्छी तरह से संगठित सामाजिक डिजाइन प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार, जाति व्यवस्था ने सकारात्मक मानवीय मूल्यों को किसी भी भूमिका को निभाने की अनुमति नहीं दी। नतीजतन, भारतीय

समाज में कोई गतिशीलता, कोई प्रगति, कोई एकता और एकीकरण नहीं था। जाति व्यवस्था का गंभीर रूप से मूल्यांकन करते हुए, डॉ. अंबेडकर ने न केवल हिंदू समाज की संरचना के खिलाफ तर्क दिया, बल्कि उस सिद्धांत के खिलाफ भी थे जिस पर जाति व्यवस्था का निर्माण किया गया था।[7]

डॉ. अंबेडकर ने तर्क दिया कि जाति व्यवस्था ने भारत की एकता और अखंडता के लिए समस्याएं पैदा की हैं। अंतरजातीय विवाह और सह–भोजन पर प्रतिबंध के कारण लोगों को एक साथ आने और अपने विचारों का आदान–प्रदान करने का अवसर नहीं है। इसके अलावा, विविधता है जो एकता की भावना के लिए प्रवाहकीय नहीं है। नतीजतन उनके बीच एकता और अखंडता नहीं है। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, यह सामाजिक सामंजस्य की कमी के कारण है कि देश बाहरी आक्रामकता की चपेट में आ गया है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार विभाजन और विघटन जाति व्यवस्था की विशेषताएं हैं और वे सामाजिक अशांति पैदा करते हैं। उन्होंने कहा कि भारत न केवल विभिन्न जातियों का एकत्रीकरण है; यह स्वार्थी और स्वयं–इच्छुक लोगों के समूहों का एक संग्रह भी है। उनकी दुश्मनी की यादें हमेशा ताजा रहती हैं। इसलिए वे एक–दूसरे को माफ नहीं कर सकते थे और यह भावना उन्हें साथ नहीं आने देती। डॉ. अंबेडकर ने आगे कहा कि जाति व्यवस्था ने हिंदू धर्म को कमजोर बना दिया। प्राचीन काल में हिंदू धर्म एक मिशनरी धर्म था लेकिन जाति व्यवस्था ने हिंदू धर्म को इस विशेषता से वंचित कर दिया, क्योंकि इसने उस व्यक्ति को कोई स्थान नहीं दिया जिसने खुद को हिंदू धर्म में परिवर्तित कर लिया था। जाति व्यवस्था ऐसे लोगों के लिए सामाजिक स्थान बनाने में असमर्थ है। इसके अलावा हिंदू धर्म में हिंदू व्यक्ति के लिए कोई प्रावधान नहीं है जिसने दूसरे धर्म को अपनाया है और अब हिंदू गुना में वापस आना चाहता है। यह हिंदू धर्म को कमजोर बनाता है। डॉ. अंबेडकर उन लोगों के खिलाफ हैं जो दावा करते हैं कि हिंदू समाज में विविधता में एकता है, क्योंकि उनके अनुसार एकता और सामाजिक एकजुटता केवल रीति–रिवाजों, विचारों और शारीरिक निकटता में समानता से निर्मित नहीं है; वे भाईचारे और मित्रता की भावना से निर्मित हैं डॉ। अम्बेडकर ने विधवा विवाह, बाल विवाह और सती प्रथा को जाति प्रथा की समस्याओं का पता लगाया। उनके अनुसार, दक अधिशेष पुरुष और अधिशेष महिला अनस के अशिष्ट सिद्धांत की उत्पत्ति इन प्रथाओं और रीति–रिवाजों के लिए जिम्मेदार है।[8]

डॉ. अंबेडकर ने वर्ण–व्यवस्था का भी गंभीर रूप से मूल्यांकन किया क्योंकि इसने समाज को चार वर्णों में विभाजित किया, प्रत्येक वर्ण के लिए कुछ कर्तव्य निर्धारित किए गए थे और यह शुद्ध और सीखने में सक्षम होने के लिए अनिवार्य था, इसलिए उन्हें वेदों का अध्ययन करने और शिक्षा देने का कार्य सौंपा गया था पहले यहाँ से संबंधित योग्य विद्यार्थी। क्षत्रिय सक्रिय, उत्साही और साहसी माना जाता था। इसलिए वेदों का अध्ययन करने और उन्हें शिक्षा देने का काम किया। वैश्य को भूमि पर खेती करने का काम सौंपा गया, साथ ही व्यापार और वाणिज्य भी। शूद्रों को नीरस माना जाता था और इसलिए उन्हें शिक्षा तक पहुंच से वंचित रखा जाता था। उन्हें ऊपरी वर्णों की सेवा का कार्य सौंपा गया था। यह माना जाता था कि यह सामाजिक व्यवस्था दैवीय रूप से दोषी थी और प्रत्येक व्यक्ति ने अपने पिछले कर्मों के अनुसार एक विशेष वर्ण में जन्म लिया। इसे अचूक, और पवित्र भी माना जाता था। इस प्रकार वर्ण–व्यवस्था द्वारा व्यक्त सामाजिक न्याय की अवधारणा वर्णों के वर्गीकरण में निहित थी।

उनके अनुसार अस्पृश्यता निम्न–जाति के लोगों के प्रति उच्च–जाति के लोगों की मानसिकता है। अतः अस्पृश्यता समुदाय के लिए आंतरिक नहीं है। यह उन व्यक्तियों द्वारा लगाया जाता है जो उच्च जाति के हैं और सोचते हैं कि उनकी जाति अधिक है। इस तरह की मानसिकता धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों के माध्यम से बनाई गई है और आगे समाजीकरण और संस्कृतकरण की प्रक्रिया द्वारा खेती की जाती है। अछूतपन अनिवार्य रूप से हिंदू धर्म का एक परिणाम है। हिंदू धर्म ने जाति व्यवस्था के माध्यम से इस मानसिकता को उत्पन्न किया है। जाति व्यवस्था क्रमबद्धता पर आधारित है। यह व्यक्ति को उसके जन्म के आधार पर एक विशेष जाति में सामाजिक स्थिति प्रदान करता है, जो कि उसके पिछले जीवन में किए गए कार्यों से निर्धारित होता है। हिंदू धर्म ब्राह्मणों को अन्य जातियों की तुलना में श्रेष्ठ और ऊंचा मानता है। एक व्यक्ति जिसने अपने पिछले जीवन में अच्छा प्रदर्शन किया वह एक ब्राह्मण परिवार में पैदा होगा। यह ऐसी धार्मिक मान्यताओं के अनुसार है, कि एक व्यक्ति खुद को दूसरों से बेहतर या हीन समझता है। इस मानसिकता के कारण, एक व्यक्ति; अपने चारों ओर अवरोध पैदा करता है और उनके भीतर रहता है। वह न तो इस सीमित स्थान से बाहर आता है और न ही वह दूसरों को इसमें प्रवेश करने देता है। नतीजतन अछूतों के बीच की खाई व्यापक हो जाती है।[9]

आदर्श समाज के आधार के रूप में सामाजिक न्याय

डॉ. अंबेडकर जिस आदर्श समाज को वास्तविक बनाना चाहते थे, वह निम्न सिद्धांतों पर आधारित हैः व्यक्ति स्वयं में एक अंत है। समाज का उद्देश्य और उद्देश्य व्यक्ति का विकास और उसके व्यक्तित्व का विकास है। समाज व्यक्ति से ऊपर नहीं है और यदि व्यक्ति को स्वयं को समाज के अधीन करना है, तो ऐसा इसलिए है क्योंकि इस बेहतरी के लिए इस तरह की अधीनता आवश्यक है। समाज के सदस्यों के बीच संबद्ध जीवन की शर्तें स्थापित होनी चाहिए, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। समाज एक तर्कसंगत धर्म पर आधारित होना चाहिए। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, एक व्यक्ति को एक साधन के रूप में नहीं माना जा सकता है, लेकिन इसे एक अंत के रूप में माना जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रकृति द्वारा हर व्यक्ति स्वतंत्र है। उसके पास ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है। इसके अलावा, उसके पास आध्यात्मिक पवित्रता है। इसलिए समाज को प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करना चाहिए और उसके विकास के लिए जगह बनानी चाहिए। समाज को पारलौकिक हितों की सेवा के लिए आवश्यक व्यक्ति की प्रतिभा का उपयोग नहीं करना चाहिए। डॉ. अंबेडकर ने माना कि हिंदू सामाजिक व्यवस्था ने उच्च जाति के हितों को बढ़ावा देने के लिए निचली जाति से संबंधित व्यक्तियों के साथ दुर्व्यवहार किया।[10] नतीजतन निचली जातियों से संबंधित व्यक्तियों को खुद को विकसित करने का कोई अवसर नहीं मिल सका। उच्च जातियों के अनुरूप सभी प्रकार और नियम बनाए गए। इस प्रकार हिंद सामाजिक व्यवस्था ने निम्न जाति के लोगों के साथ घोर अन्याय किया।

निष्कर्ष

डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारत के राजनीतिक और सामाजिक चिंतकों में से एक थे। वे नृविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन, धर्म, कानून, इतिहास और राजनीति जैसे विविध विषयों के अच्छे जानकार थे। जैसा कि वे दलित परिवार में पैदा हुए थे, उन्हें अन्याय और असमानता का कड़वा अनुभव भी था। विविध विषयों के बारे में उनके ज्ञान और दलित के रूप में उनके अनुभव ने उन्हें सामाजिक समस्याओं पर एक विशिष्ट तरीके से सोचने के लिए प्रेरित किया। वह राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को समाज के सुधार के लिए आवश्यक पूर्व शर्त नहीं मानते थे, न ही उन्हें विश्वास था कि राजनीतिक स्वतंत्रता से सामाजिक सुधार संभव होगा। उन्होंने कहा कि जब पेशवा महाराष्ट्र पर शासन कर रहे थे, तब राजनीतिक शक्ति भारतीयों के हाथ में थी, और फिर

भी सत्ता का एकमात्र वांछनीय रूप कैसे आर्थिक संदर्भों में समझा सकता है कि लोग मानसिक शांति के लिए अपने गृह धन का त्याग क्यों करते हैं। डॉ. अंबेडकर ने राजनीतिक और आर्थिक सुधार शुरू करने से पहले ऐसे सुधारों का लाभ उठाने के लिए लोगों को सक्षम बनाना आवश्यक है। यह केवल विधवा विवाह, बाल विवाह और सती प्रथा जैसे अनैतिक रीति–रिवाजों को समाप्त करके प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसके लिए समाज के मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है। परिवार के सुधार के लिए उच्च जातियों में ही बदलाव लाया जाएगा। निचली जातियां इस तरह के सुधार से कुछ हासिल नहीं करेंगी। इसलिए उन्होंने तर्क दिया कि यदि हम प्रत्येक व्यक्ति को राजनीतिक और आर्थिक सुधारों के फल का आनंद लेने में सक्षम बनाना चाहते हैं तो पूरे समाज को सुधारना आवश्यक है। समग्र रूप से समाज में सुधार की आवश्यकता की वकालत करने के पीछे डॉ. अम्बेडकर का एक निश्चित दृष्टिकोण था। उनके अनुसार, विधवा विवाह, बाल विवाह और सती प्रथा जैसी समस्याएं प्रमुख सामाजिक बुराइयां हैं क्योंकि ये मौलिक मानवाधिकारों के लिए अयोग्य हैं और भारतीय समाज को निष्क्रिय और अक्षम बनाने के लिए भी जिम्मेदार हैं। डॉ. अम्बेडकर ने व्यक्ति, समाज और देश के संपूर्ण विकास के लिए जातिविहीन समाज की स्थापना के लिए सामाजिक न्याय के महत्व की वकालत की।

संदर्भ

1. जाटव, सामाजिक न्याय – भारतीय परिप्रेक्ष्य में; एबीडी पब्लिशर्स, राजस्थान 2006, 16।
2. अम्बेडकर बी. आर., लेखन और भाषण; खंड 3, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई 1987, 25।
3. जाटव, सेशन, नागरिक 95।
4. अम्बेडकर बी. आर. लेखन और भाषण 13, 12–16।
5. जाटव, पूर्वोक्त 96–97।
6. अम्बेडकर बी. आर; लेखन और भाषण; खंड 3, 25।
7. अम्बेडकर बी. आर.; अननिहिलेशन ऑफ़ कास्ट, अर्नोल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1990।
8. अम्बेडकर बी. आर .; लेखन और भाषण 3।
9. अंबेडकर, ऑप. नागरिक 5, 21।
10. अंबेडकर, पूर्वोक्त, नागरिक 3।